भारत में शिक्षा-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (2500ई.पू. से 2000ई. तक)

कृष्णचन्द्र मालू

सभ्यता के विकास के साथ-साथ शिक्षा ने विकास की प्रक्रिया में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। मनुष्य के विकास की अवस्थाएं जैसे-जैसे बदलती रही शिक्षा का उद्देश्य और विकास भी बदलता गया। किसी काल में शिक्षा चरित्र-निर्माण के लिए रही है, तो किसी काल में ज्ञान के लिए। और किसी समय उसे अर्थोपार्जन का साधन माना गया, तो किसी समय सिर्फ अक्षर-ज्ञान ही शिक्षा का उद्देश्य होकर रह गया।

स्वामी विवेकानंद ने कहा है "शिक्षा एक राष्ट्र की प्रगति का प्रतीक है। यदि आप किसी देश के उन्नयन एवं अवनयन का काल जानना चाहते हैं, तो इसे देश की शिक्षा के इतिहास में खोजिए।"

मानव इतिहास के आदिकाल से ही, शिक्षा का विविध भांति विकास होता रहा है। प्रत्येक देश समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए समयानुसार शिक्षा प्रणाली विकसित करता है, ताकि उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान बनी रहे।

वैदिक काल से लेकर आठवीं पंचवर्षीय योजना तक आते-आते शिक्षा ने एक लंबी विकास यात्रा की है जिसमें कई उतार-चढ़ाव आए हैं।

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा बहुत पुरातन है। भारतीय शिक्षा का प्रारंभ ऋग्वेद काल से होता है। भारतीय शिक्षा में वेद महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय सभ्यता एवं शिक्षा की पृष्ठभूमि में वेद ही हैं।

शिक्षा के विकास की अवधि को अर्थात् 2500 ई.पू. से वर्तमान सन् 2000 तक के वर्षों को विचार एवं विवेचना की सुविधा के लिए निम्न भागों में बांट सकते हैं।

वैदिक युग की शिक्षा (2500ई. पू. से 500ई. पू.)

वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा को प्रकाश का वह स्रोत माना गया है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पथ प्रदर्शन करती है। वैदिक युग में शिक्षा का तात्पर्य अंतर्ज्योति तथा शक्ति (आत्म शक्ति) से था जिससे मनुष्य का सर्वांगीण व संतुलित विकास होना था। वैदिक युग में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य व आदर्श (1) ईश्वर शक्ति, (2) धार्मिक भावना का विकास, (3) चरित्र निर्माण (4) व्यक्तित्व का विकास, (5) सामाजिक कर्तव्यों का पालन था। शिक्षा की व्यवस्था गुरुओं के आश्रम (गुरुकुलों) में होती थी। शिक्षा की शिक्षण विधि मौखिक थी।

वैदिक युग में मानव समाज कर्म स्वभाव के अनुसार चार भागों में बांट दिया गया था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का काम था पढ़ना और पढ़ाना, क्षत्रिय का कर्तव्य था प्रजा तथा आश्रितों का रक्षण और पालन करना, वैश्य का काम था व्यापार और कृषि तथा शूद्र का काम था सेवा करना और सब वर्णों के काम की वस्तुएं बनाना। समाज को पूर्ण व्यवस्थित करने के लिए, इस वर्ण व्यवस्था की सृष्टि की गई थी। जाति भेद की व्यवस्था उस समय किसी ने नहीं सोची थी।

बौद्ध शिक्षा का युग (500ई. पू. से 1200ई. पू.)

ईसा के जन्म से पूर्व छठी शताब्दी में महान शिक्षक और धर्मोपदेशक महात्मा बुद्ध ने निर्वाण की प्राप्ति के लिए 'अष्ट मार्ग' बताया। उन्होंने बौद्ध धर्म में चारों जातियों के व्यक्तियों को स्थान दिया। वैदिक काल के दैवी देवताओं की उपेक्षा नहीं की, पर आचरण पर अधिक बल दिया। उन्होंने एक नवीन शिक्षा व्यवस्था को जन्म दिया, जो वैदिक कालीन शिक्षा के समान होते हुए भी कुछ बातों में भिन्न थी।

बौद्ध धर्म का विकास संघों में हुआ था। अतः बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केंद्र संघ ही थे। केवल संघों में ही बौद्ध शिक्षा दी जाती थी, अन्यत्र किसी स्थान पर नहीं। बौद्धकाल में यज्ञ का स्थान संघों ने ले लिया था। अतः बौद्ध संघ की पद्धति ही बौद्ध शिक्षा पद्धति थी। जिस प्रकार वैदिक युग में 'यज्ञ' संस्कृति के केंद्र थे उसी प्रकार बौद्ध युग में 'संघ' शिक्षा और विद्या के केंद्र थे। इसीलिए प्रसिद्ध दार्शनिक डा. राधाकृष्णन ने कहा है 'बौद्ध धर्म नया धर्म नहीं है, अपितु हिंदु धर्म का ही परिवर्तित रूप है।"

अंतर सिर्फ इतना था कि गौतम बुद्ध ने जाति पाति का भेद उठाकर सबको संघ की शरण में लेना

स्वीकार कर लिया था। 'संघं शरणं गच्छामि।' बौद्ध संसार में अपने संघों से पृथक या स्वतंत्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था। सब प्रकार की शिक्षा धार्मिक तथा लौकिक श्रमणों के हाथ में थी।

मुस्लिम शिक्षा प्रणाली

भारत में मुसलमानों का शासन लगभग साढ़े पांच सौ वर्षों तक रहा। अर्थात कुतुबुद्दीन ऐबक के राज्यारोहण से प्लासी के युद्ध तक। इस दीर्घकालीन शासन के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता विशेष रूप से प्रभावित हुई है। साहित्य तथा ललित कलाओं का विकास हुआ। भारतीय भाषाओं को नया रूप मिला तथा नवीन भक्ति मार्ग का जन्म हुआ। मुस्लिम शासन का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा और एक नई शिक्षा प्रणाली की नींव देश में पड़ी। इसे मुस्लिम शिक्षा प्रणाली कह सकते हैं। यह शिक्षा प्रणाली उन भारतीयों के लिए निर्मित हुई थी, जिन्होंने इस्लाम धर्म की दीक्षा ली थी।

भारत में मुस्लिम शिक्षा प्रणाली का वही स्वरूप था, जो अन्य इस्लामी देशों में प्रचलित था। प्राथमिक शिक्षा मक़तब प्रत्येक मस्जिद के साथ जुड़े रहते थे। मकतबों का पाठ्क्रम कुरान पर ही केंद्रीभूत होता था। कुरान के साथ-साथ बालकों को बुजू करना, नमाज पढ़ना, अजान के समय पढ़ी जानी वाली दुआएं इत्यादि भी सिखाई जाती थीं। उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी।

मुगल वंश के सभी बादशाह विद्या प्रेमी थे। बादशाह अकबर ने मुगल शिक्षा को एक नई दिशा देने की कोशिश की थी। सरकारी नौकरी के लिए राजभाषा फारसी के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती थी। अनेक हिंदू मकतब तथा मदरसे में अध्ययन करने में हिचकते थे। अकबर ने पाठ्यक्रम में सुधार किया तथा मकतबों और मदरसों में हिंदुओं के पढ़ने लिखने की उचित व्यवस्था की ताकि पढ़ने में उनकी हिचकिचाहट दूर हो जाए और उन्हें अपनी संस्कृति का ज्ञान हो जाए। इस प्रकार हिंदु-मुस्लिम एकता का सूत्रपात हुआ। इसी समय एक नवीन भाषा उर्दू की सृष्टि हुई। हिंदी भाषा का महान हिंदी काव्य और गौरव तुलसीकृत (रामायण) 'रामचरित मानस' इसी काल में रचा गया। कबीर साहित्य रामचन्द्रिका तथा अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं इसी युग की देन हैं। मुस्लिम काल में सैनिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। इसके बकम करैम व्यक्ति तथा हस्तकलाओं को भी विशेष प्रोत्साहित किया जाता था। स्त्री शिक्षा नाम मात्र को केवल राजघरानों और उच्च परिवारों की महिलाओं को ही उपलब्ध थी। स्त्री शिक्षा और स्त्रियों की दुर्दशा सबसे अधिक इसी काल में हुई थी।

ब्रिटिश युग में शिक्षा

ब्रिटिश युग 1757 से 1947 तक माना जाता है। ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण में शिक्षा के प्रति तटस्थ नीति अपनाई गई और शासन शिक्षा के प्रति उदासीन रहा। शुरू के दिनों में ब्रिटिश शासन (ईस्ट इंडिया कंपनी) ने न ही शिक्षा की जिम्मेदारी ली और न ही प्रचलित शिक्षा में कुछ हस्तक्षेप किया। कंपनी के डायरेक्टरों का कहना था कि शिक्षा विस्तार

के लिए शासन की कोई जिम्मेदारी नहीं है। परंतु शीघ्र ही ब्रिटिश शासन ने कंपनी के आज्ञा पत्र में परिवर्तन कराया और कंपनी को यह मानने के लिए बाध्य किया कि शिक्षा का सरकारी राजस्व पर अधिकार है। ब्रिटिश शासन के द्वितीय चरण को हम 'प्रांतीय नीति की अवधि' कह सकते हैं। कारण, प्रांतों ने अपनी-अपनी शिक्षा नीति का अनुसरण किया। इस अवधि में कतिपय समस्याओं पर घोर वाद-विवाद हुए जैसे शिक्षा नीति, शिक्षा का माध्यम, शिक्षा का प्रबंध इत्यादि। इन विवादों की मीमांसा लार्ड मैकाले ने 1835 में एक प्रसिद्ध लेखपत्र में की थी। इस पत्र के फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार बढ़ा परंतु झगड़ा न पूर्णरूप से शांत हुआ और न ही शिक्षा नीति तय हो पाई। हां, प्रत्येक प्रांत अपनी-अपनी शिक्षा नीति को अपनाता रहा।

मैकाले का लेखपत्र

मैकाले की शिक्षा नीति का भारतीय विद्वानों के द्वारा मिश्रित स्वागत किया गया। एक वर्ग उसकी नीति की कटु आलोचना कर रहा था, तो दूसरा वर्ग राजाराममोहन राय आदि ने उसे आधुनिक शिक्षा का पथप्रदर्शक माना। मैकाले ने अंग्रेजी भाषा को लादने का जो प्रयास किया, उससे भारतीयों को कुछ हानि हुई पर कुछ लाभ भी हुआ।

1835 से 1854 तक का समय शिक्षा के क्षेत्र में काफी हलचल का समय रहा। यह काल समस्याओं और विवादों का समय था। लंबे समय तक समस्याएं शिक्षा के क्षेत्र में अवरोध डालती रहीं। लार्ड आकलैंड के शासन काल में इन समस्याओं का समाधान हुआ और शिक्षा की स्पष्ट नीति का निर्धारण हुआ।

वुड का घोषणा पत्र

वुड ने अपने 1854 के घोषणा-पत्र में भारतीय शिक्षा का संपूर्ण उत्तरदायित्व कंपनी प्रशासन के कंधों पर रखा था और उसे स्पष्ट रूप से बता दिया था कि भारतीयों को शिक्षित करना कंपनी के महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक है। वुड का घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में विदेशी शासकों द्वारा उठाया गया एक महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी कदम था, जिसने शिक्षा को नई दिशा, नया लक्ष्य और नई गति प्रदान की और लड़खड़ाती शिक्षा व्यवस्था को इस घोषणा-पत्र से नवजीवन और नई स्फूर्ति मिली।

सन् 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद बजने से इस घोषणा के अनेक सुझावों को क्रियान्वित नहीं किया गया था क्योंकि स्वतंत्रता की क्रांति से ब्रिटिश शासन का अस्तित्व खतरे में पड़ गया था और शिक्षा की प्रगति रुक गई। ब्रिटिश शासन के तृतीय चरण को अखिल भारतीय शिक्षा नीति की अवधि का समय माना गया है। यद्यपि इसकी शुरूआत वुड के घोषणा-पत्र से हो चुकी थी, परंतु अंत सन् 1919 के गवरन्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट द्वारा हुआ। इस अवधि में केंद्रीय सरकार संपूर्ण देश की शिक्षा नीति स्वयं निर्धारित करती रही। इस समय तीन महत्वपूर्ण आयोगों ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की—

हंटर आयोग-1882, विश्वविद्यालय आयोग-1902 सैलडर आयोग-1917

अनेक शिक्षाविदों ने प्रांतीय सरकारों को अनेक प्रसिद्ध पत्र भेजे तथा शिक्षा संबंधी कई सम्मेलन आयोजित किए। हंटर आयोग ने मिशनरियों को शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अधिकार देने का विरोध किया और भारतीय जनता को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया।

1886 में महर्षि दयानंद ने लाहौर में एक डी. ए.वी. कालेज की स्थापना की। आर्य समाज ने इस कार्य को समस्त देश में बढ़ाया। महर्षि दयानंद ने न केवल सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में शिक्षा का सहारा लिया, वरन् देश और धर्म पर मर मिटने के लिए भी शिक्षा का ही सहारा लिया। इस प्रकार दयानंद ने देश और धर्म की महानतम सेवा की जिसके कारण उनका नाम भारतीय शिक्षा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा गया है।

इसी श्रृंखला में भारतीय महामना मदन मोहन मालवीय भी आते हैं। जिन्होंने वाराणसी में हिंदू विश्वविद्यालय स्थापित किया, जो एशिया का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय बनकर देश का गौरव बना। शिक्षा संस्थाओं की इस काल में पर्याप्त वृद्धि हुई, पर शिक्षा का स्तर गिर गया।

देश में यही समय राष्ट्रीय जागृति का समय माना जाता है। इसी काल में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और बंग भंग आंदोलन शुरू हुआ। इन सब घटनाओं का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा और अंग्रेजी शासन की विश्वविद्यालयीन शिक्षा नीति की तीखे स्वरों में आलोचना होने लगी। राष्ट्रीय आंदोलन ने विद्यार्थियों को राजनैतिक क्षेत्र में खींच लिया। इसी समय श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य करने की कोशिश की, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता तो नहीं मिली परंतु इस प्रयास के आगे चलकर परिणाम अच्छे रहे।

अब देश में स्वाधीनता आंदोलन खडा हो गया तब शासन ने गवरन्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट पास किया जिसके अनुसार शिक्षा की जिम्मेदारी भारत सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के हाथों में आ गई। शिक्षा का संपूर्ण प्रबंध एक निर्वाचित भारतीय मंत्री के हाथ सौंप दिया गया। इस प्रकार भारतीय विधान सभा शिक्षा संबंधी प्रश्नों पर विचार करने लगी और जनता शिक्षा की उन्नति के कार्य में दिलचस्पी लेने लगी। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिए कानून बने, स्त्री शिक्षा की उन्नति हुई तथा प्रौढ़ शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। शिक्षा में अनेक नई धाराएं बुनियादी शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, मातृभाषा पर जोर, पाठ्यक्रम का विस्तार-प्राविधिक शिक्षा आदि शुरू की गई, पर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त न हो सकी परंतु शिक्षा के प्रसार ने राष्ट्रीय चेतना को उभारने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

सार्जेन्ट रिपोर्ट

1944 के द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त सार्जेंट योजना शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। योजना में भारतीय शिक्षा की उन्नति के साथ-साथ शिक्षा के द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास पर बल दिया गया। व्यावसायिक शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया। योजना ने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की

त्रुटियों को दूर करने, शिक्षकों की स्थिति सुधारने, बालकों के सर्वांगीण विकास करने और उन्हें समाज के लिए उपयोगी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा

15 अगस्त 1947 के दिन भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ देश में एक नवीन जागृति हुई एवं आम जनता में शिक्षा की चाह बढ़ी। स्वाधीन भारत को अनेक शिक्षा समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्त के बाद भारत की शिक्षा प्रशासन नीति में कुछ भी परितर्वन नहीं किया गया है। अंग्रेजी शासन में शिक्षा एक राज्यीय विषय था। केंद्रीय सरकार राज्यीय शिक्षा नीति में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी केवल दो ही विषयों में केंद्रीय सरकार की संपूर्ण जिम्मेदारी थी। ये विषय थे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से विभिन्न उच्च शिक्षा निकायों के बीच समन्वय स्थापित करना और उच्च स्तर पर शिक्षा शोध, वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शिक्षा का स्तर निर्धारित करना। यह जटिल तथा व्यय साध्य विषय पूरे देश से संबंधित था। इसलिए हमारे संविधान ने इनकी जिम्मेदारी राज्यों पर लादना हितकारी नहीं समझा। सन् 1945 में भारत सरकार ने अपना एक स्वतंत्र शिक्षा विभाग खोला था। स्वतंत्रता के बाद यह विभाग मंत्रालय में बढ़ा दिया गया। सन् 1957 में इस मंत्रालय को वैज्ञानिक शोध का कार्य सौंपा गया और इसका नाम वैज्ञानिक एवं शोध मंत्रालय पड़ा। एक वर्ष बाद यह मंत्रालय दो भागों में विभक्त हुआ–शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान एवं संस्कृति।

केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय

शिक्षा मंत्रालय के सबसे प्रधान कर्मचारी शिक्षा परामर्शदाता होते हैं। ये भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय में सचिव का काम करते हैं। शिक्षा मंत्री को पूरे देश की शिक्षा नीति तथा शासन के विषय में उचित परामर्श देते हैं। वर्तमान में इस विभाग का नाम 'मानव संसाधन विकास' मंत्रालय है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा ग्रहण करने के लिए छात्रों की संख्या दिन-प्रतिदन बढ़ती गई परंतु जिस प्रकार की शिक्षा विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दी जा रही थी, उससे जन साधारण में अत्यधिक असंतोष था। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य परीक्षा पास करना रह गया। स्वतंत्र भारत की नवीन राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में इस प्रकार की शिक्षा देश के बच्चों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझी गई, और देश तथा वातावरण की आवश्यकताओं के अनुरूप उनके नवनिर्माण की मांग की गई। फलस्वरूप भारत सरकार ने 4 नवंबर 1948 को डा. एस. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' का गठन किया। इस आयोग को राधाकृष्णन कमीशन भी कहा गया।

आयोग की नियुक्ति का उद्देश्य

आयोग की नियुक्ति का ध्येय था भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा की तत्कालीन स्थिति की जांच करके एक रिपोर्ट प्रस्तुत करना तथा उन सुधारों

और विस्तारों के विषय में सुझाव देना, जो देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं के अनुरूप हो सके।

आयोग की सिफारिशें

आयोग ने 25 अगस्त 1949 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट में (1) विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य (2) अध्यापक वर्ग की योग्यता, वेतन एवं सेवा शर्तों में सुधार (3) अध्यापन का स्तर (4) पाठ्यक्रम-सर्वांगीण विकास करने वाला (5) स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान (6) व्यावसायिक शिक्षा (7) धार्मिक शिक्षा (8) शिक्षा का माध्यम (9) परीक्षाएं (10) छात्र, उनके कार्य तथा उनका कल्याण (11) स्त्री शिक्षा (12) ग्रामीण विश्वविद्यालय आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

यदि आयोग की सभी सिफारिशों को क्रियान्वित किया जाता, तो हमारे विश्वविद्यालयों की रूपरेखा पूर्णतया परिवर्तित हो जाती है। वे वास्तव में राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हो जाते। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने आयोग के कार्यों की सराहना करते हुए लिखा था "आयोग ने हमारी विश्वविद्यालयीन शिक्षा की प्राप्तियों पर अत्यंत गंभीरतापूर्वक विचार करके एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है, और साथ ही अति अमूल्य प्रस्ताव तथा सुझाव भी दिए हैं।"

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)

स्वतंत्र भारत में राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन होने लगा अतः उससे सामंजस्य स्थापित करने के लिए माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता अनुभव की गई।

ताराचंद समिति-सन् 1948 में भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की। इसके अध्यक्ष तत्कालीन शिक्षा सलाहकार डा. ताराचंद थे। इस समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की–

1. विद्यालयीन शिक्षा की अवधि 12 वर्ष हो। इसमें 5 वर्ष बुनियादी, 3 वर्ष प्रवर बुनियादी या पूर्व माध्यमिक एवं चार वर्ष का उच्चतर या माध्यमिक का पाठ्यक्रम हो।

2. उच्चतर माध्यमिक स्कूल बहुउद्देश्यीय हों।

3. अवर बुनियादी के पश्चात राष्ट्रभाषा हिंदी एक अनिवार्य विषय हो। 4. माध्यमिक शिक्षा के बाद एक सार्वजनिक परीक्षा हो। 5. माध्यमिक शिक्षा की जांच के लिए कए कमीशन नियुक्त किया जाए।

ताराचंद समिति की (केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड) अनुशंसा के आधार पर सन् 1952-53 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया। आयोग के अध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर बनाए गए। यह आयोग मुदालियर कमीशन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मुदालियर आयोग ने प्रचलित माध्यमिक शिक्षा के अध्ययन के लिए संपूर्ण देश का दौरा किया और संपूर्ण भारत में प्रचलित माध्यमिक शिक्षा का गंभीर अध्ययन किया, समस्याओं को समझा और काफी सोच, विचार विनिमय के उपरांत अगस्त 1953 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके द्वारा– (1) भारत

की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करने पर प्रकाश डाला गया। (2) माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन एवं सुधार के लिए सुझाव दिए।

आयोग के विचार

1. माध्यमिक शिक्षा के दोष

– शिक्षा का जीवन से कोई संबंध नहीं है।

– इस शिक्षा से व्यवहारिक जगत का किंचित मात्र भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

– अध्ययन की नीतियां परंपरागत हैं।

– शिक्षा एक पक्षीय एवं संकीर्ण है और छात्रों की रूचि के अनुकूल नहीं है।

– शिक्षा से विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास नहीं होता।

– कक्षा में छात्रों की संख्या इतनी अधिक रहती है कि अध्यापकों का छात्रों से व्यक्तिगत संपर्क नहीं हो पाता।

– शिक्षा में चरित्र निर्माण का बिल्कुल भी ध्यान नहीं रखा जाता।

– परीक्षा प्रणाली अत्यधिक दोषपूर्ण बताई गई।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के सुझाव

लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास, व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि, व्यक्तित्व का विकास, माध्यमिक शिक्षा का संगठन पुनः किया जाए, भाषाओं का अध्ययन, पाठ्यक्रमों के विषय, शिक्षण की प्रावैधिक विधियां, चरित्र निर्माण की शिक्षा, छात्रों का मार्गदर्शन एवं समुपदेशन, छात्रों का शारीरिक कल्याण, परीक्षा एवं शैक्षिक मूल्यांकन, अध्यापकों की उन्नति, अध्यापकों का प्रशिक्षण, प्रशासन की समस्या।

यदि आयोग के सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया जाता, तो हमारी दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली दोष मुक्त हो जाती।

कोठारी कमीशन (1964-66)

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् डा. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में एक आयोग गठित हुआ जिसका उद्देश्य प्रचलित शिक्षा व्यवस्था का गहन अध्ययन तथा सूक्ष्म निरीक्षण के उपरांत दोषों के निवारण और सुधार हेतु संस्तुतियां प्रस्तुत करना था। आयोग ने काफी परिश्रम कर शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र का गहन अध्ययन और निरीक्षण किया और 21 महीने के उपरांत अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

आयोग की संस्तुतियां

1. शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य–

– उत्पादन में वृद्धि, स्त्री शिक्षा को संपूर्ण शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाए, माध्यमिक शिक्षा को व्यापक रूप दिया जाए, उच्च शिक्षा में कृषि/तकनीकी शिक्षा पर बल दिया जाए।

2. सामाजिक और राष्ट्रीय एकता–

– सामान्य विद्यालय प्रणाली, सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा, मातृभाषा को माध्यम बनाया जाए, अंग्रेजी के अध्ययन को विश्वविद्यालय के स्तर पर जारी रखा जाए, हिंदी को संयोजक भाषा का रूप दिया जाए, राष्ट्रीय चेतना के विकास को विद्यालय शिक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया जाए।

3. शिक्षा और प्रजातंत्र की सुदृढ़ता–

– 14 वर्ष तक अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा,

माध्यमिक और उच्च स्तर पर कुशल नेतृत्व का विकास, शिक्षा के समान अवसर।

4. शिक्षा और आधुनिकीकरण–

– टेक्नालाजी को अपनाया जाए, शिक्षा के द्वारा उचित दृष्टिकोण तथा मान्यताओं का विकास किया जाए, स्वतंत्र अध्ययन, स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र निर्णय की आदतों का विकास किया जाए।

5. सामजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास किया जाए।

6. शिक्षा की संरचना और स्तर–

– 10 वर्ष की सामान्य शिक्षा, 3 वर्ष प्रथम डिग्री कोर्स, 2 या 3 वर्ष का द्वितीय डिग्री कोर्स, 2 या 3 वर्ष का स्नातकोत्तर डिग्री कोर्स, स्कूल काम्प्लेक्स का निर्माण।

7 शिक्षकों की स्थिति–

– शिक्षकों का न्यूनतम वेतनक्रम निर्धारित किया जाए, विश्वविद्यालयों और उनसे संबद्ध कालेजों में वेतनक्रम में पर्याप्त वृद्धि, शिक्षकों के कार्य तथा सेवा संबंधी दशाओं में सुधार।

8. अध्यापक शिक्षा–

– शिक्षक शिक्षा की पृथकता का अंत, व्यावसायिक शिक्षा में सुधार, अध्यापक प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष, प्रशिक्षण संस्थाओं में सुधार।

9. छात्र संख्या और जनबल–

– छात्र संख्या को जनबल की आवश्यकताओं के अनुसार सीमित करना, चुने हुए छात्रों को प्रवेश देना, रोजगार के अवसरों के अनुसार शिक्षक की सुविधाओं में विस्तार करना।

10. शैक्षिक अवसरों की समानता

11. विद्यालय शिक्षा का विस्तार

12. विद्यालय पाठ्यक्रम

13. विद्यालय प्रशासन और निरीक्षण

14. शिक्षण विधियां मार्गदर्शन, और मूल्यांकन

15. उच्च शिक्षा

16. कृषि शिक्षा

17. व्यवसायिक प्राविधिक और इंजीनियरिंग शिक्षा

18. विज्ञान की शिक्षा

19. वयस्क शिक्षा–निरक्षरता का उन्मूलन, अनवरत शिक्षा, पत्राचार पाठ्यक्रम, पुस्तकालय, प्रौढ़ शिक्षा में विश्वविद्यालय के कार्य, प्रौढ़ शिक्षा का संगठन और प्रशासन आदि विषयों पर विस्तृत सुझाव दिए।

आयोग ने अनेक अच्छे सुझाव दिए। किन्तु राजनैतिक इच्छा शक्ति के अभाव एवं क्रियान्वयन में शिथिलता के कारण कोई क्रांतिकारी परिवर्तन शिक्षा में नहीं आ पाया।

पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा

जब देश स्वतंत्र हुआ तो प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ था, अतः देश के कर्णधारों ने देश की प्रत्येक क्षेत्र में क्रमबद्ध प्रगति के लिए योजनाएं बनाई। भारतीय विकास का युग अर्थात् योजना युग प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ होता है। इन योजनाओं में शिक्षा के विकास हेतु अनेक परियोजनाएं बनाई गई और क्रियान्वित की गई। अब तक आठ पंचवर्षीय योजनाएं क्रियान्वित हो चुकी हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए 151.66 करोड़

रुपये की व्यवस्था का प्रावधान रखा गया था। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के स्थान पर बेसिक शिक्षा लागू करना माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन, शिक्षा के स्तरों में समन्वय, महिला शिक्षा, शिक्षक, प्रशिक्षण और दशा सुधार, शिक्षा प्रसार आदि कार्यक्रम निर्धारित किए गए।

योजना अधिक सफल नहीं रही। कार्यक्रमों की गति अर्थाभाव के कारण शिथिल रही, अनुभव की कमी के कारण योजना का व्यावहारिक पक्ष कमजोर रहा एवं शिक्षा के क्षेत्र में धन का अपव्यय हुआ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना भारतीय शिक्षा के इतिहास में नियोजन का प्रथम प्रयास था। अनुभव मनुष्य का सर्वोत्तम शिक्षक है। योजनाकारों ने प्रथम योजना के दोषों तथा त्रुटियों से एक नवीन पाठ सीखा और उनके आधार पर द्वितीय योजना में शिक्षा प्रसार एवं पुनर्गठन का दृढ़ संकल्प किया। फलस्वरूप पहली योजना की अपेक्षा दूसरी योजना में अधिक सफलता मिली।

योजना का लक्ष्य

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बेसिक शिक्षा का विकास व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा का विकास, व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षकों का विकास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा का विकास, सैनिक शिक्षा का विकास, माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिकता लाने का लक्ष्य एवं उच्च शिक्षा में पुनर्गठन के लक्ष्य सामने रखे गए थे।

योजना का मूल्यांकन

प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की गई। प्रावैधिक शिक्षा एवं शिक्षण प्रशिक्षण के विकास पर बल दिया गया। अनुभव होने पर भी शिक्षा में प्रचलित दोषों के निवारण के कोई प्रयास नहीं किए गए। अतः लक्ष्य में केवल 49 प्रतिशत की सफलता प्राप्त हो सकी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना

इस योजना में शिक्षा के सभी क्षेत्रों पर ध्यान देते हुए, माध्यमिक विद्यालयों का शिक्षा स्तर ऊंचा कर उन्हें बहुउद्देशीय बनाया गया। सामाजिक, तकनीकी औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति हुई। धार्मिक, नैतिक शिक्षा और अनुसंधान को प्रोत्साहित किया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सभी स्तरों पर शिक्षा के विकास का लक्ष्य रखा गया। योजना के लिए 1260 करोड़ रु. का प्रावधान रखा गया। व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा के विकास के साथ-साथ भाषाओं, पाठ्य पुस्तकों तथा विविध शब्दावलियों के कार्यक्रम हाथ में लिए गए। आर्थिक संकट के कारण छात्रवृत्तियों में कमी की गई।

पांचवी पंचवर्षीय योजना

पांचवीं पंचवर्षीय योजना अप्रैल 1973 से प्रारंभ हुई। इस योजना में शिक्षा के लगभग सभी पहलुओं पर नीति निर्धारण किया गया। इस योजना में शिक्षा

के निम्नलिखित लक्ष्य सामने रखे गए–

– शिक्षा की गुणात्मक उन्नति पर जोर देना, शिक्षा को आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों से संबंद्ध करना, शिक्षा को विकास की आवश्यकताओं और रोजगारों से जोड़ना तथा सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए शिक्षा के समान अवसरों की व्यवस्था करना।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर 1726 करोड़ रुपये व्यय किए जाने का प्रस्ताव रखा गया था।

छठवीं पंचवर्षीय योजना

छठवीं पंचवर्षीय योजना में 2525 करोड़ रुपये शिक्षा पर व्यय करने का लक्ष्य रखा गया। शिक्षा को विकासात्मक गतिविधियों का केंद्र माना गया। 15-35 तक आयु वर्ग को प्रौढ़ शिक्षा तथा प्राइमरी शिक्षा के लोक व्यापीकरण पर विशेष बल दिया गया। 20 सूत्रीय कार्यक्रम में भी इन्हें शामिल किया गया। कमजोर वर्ग की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। जिसमें बालिका शिक्षा, अनुसूचित जाति एवं जन जाति की शिक्षा आती है. 1990 तक अनिवार्य शिक्षा लागू करना, क्षेत्रीय भाषाओं को विकास शिक्षा के मुख्य लक्ष्य रखे गए।

सातवी व आठवी पंचवर्षीय योजना

सातवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर बजट बढ़ाने का प्रावधान रखा गया। संस्कृति एवं खेल पर विशेष महत्व दिया गया। 1961 में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने हेतु जो कानून बनाया गया था उसे पूरा करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। शिक्षा में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी तरह से प्रयास किए जाने लगे। पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के लक्ष्यों का निर्धारण होता रहा है और इसके लिए आयोगों का गठन भी होता रहा है। इसी श्रृंखला में 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी है जो कोठारी कमीशन के सुझावों पर आधारित है। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने स्वतंत्रता के बाद के शिक्षा के इतिहास में अहम् भूमिका निभाई है। इस शिक्षा नीति का उद्देश्य राष्ट्र की प्रगति, सहनागरिकता व संस्कृति और राष्ट्रीय क्षमता की भावना को सुदृढ़ करना था। इसमें शिक्षा प्रणाली के सर्वांगीण पुनर्निर्माण पर बल दिया गया था, ताकि हर स्तर पर शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाया जा सके। साथ ही विज्ञान और तकनीकी पर ज्यादा ध्यान दिया गया। इस नीति के अंतर्गत मूल्यों को विकसित करना तथा जीवन और शिक्षा में गहरा रिश्ता कायम करने पर भी बल दिया गया।

पूरे देश में शिक्षा की समान संरचना 1968 की शिक्षा-नीति की शायद सबसे बड़ी देन थी। 10+2+3 की शिक्षा प्रणाली को अधिकांश राज्यों ने अपना लिया है। छात्र-छात्राओं को एक समान शिक्षा देने के उद्देश्य से स्कूली पाठ्यक्रम तैयार किए गए। गणित व विज्ञान को अनिवार्य विषय बनाया गया और कार्यानुभव को महत्व दिया गया।

1968 की शिक्षा नीति लागू होने के बाद देश में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। गांवों में रहने वाली 10 प्रतिशत से अधिक जनता के लिए एक कि.मी. फासले के भीतर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध कराये गए हैं। अन्य स्तरों पर भी शिक्षा सुविधाएं पहले

की अपेक्षा अधिक बढ़ी हैं।

1968 की शिक्षा-नीति की उपलब्धियां अपने आप में अहम् हैं पर सत्य यह है कि 1968 की शिक्षा नीति के मूल सुझाव कार्यरूप में परिणित नहीं हो सके क्योंकि न तो स्पष्ट दायित्व निर्धारित किए गए, और न ही वित्तीय संगठन संबंधी उचित व्यवस्था की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

1968 की शिक्षा नीति लागू होने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई है। स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थानों की बढ़ोत्तरी भी हुई है, पर शिक्षा में मूल भूत परिवर्तन नहीं हो सका। शिक्षा संस्थानों, शिक्षकों और कर्मचारियों की संख्या बढ़ी है पर इनके बहुत अच्छे परिणाम नहीं आ सके।

अतः सन् 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की पहल पर भारतीय संसद ने राष्ट्रव्यापी लंबी बहस के बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उसकी कार्ययोजना जारी की। पहली बार शिक्षा में नीति के साथ-साथ क्रियान्वयन की एक पूरी प्रणाली संसाधनों के साथ देने की कोशिश की गई। शिक्षा के लोकव्यापीकरण को नीति का सर्वाधिक प्राथमिक मुद्दा माना गया और प्राथमिक शिक्षा की व्यापक गुणवत्ता के लिए अनेक योजनाएं प्रारंभ की गई हैं। जिनमें आपरेशन ब्लेक बोर्ड, जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान, व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षा का अप्रमाणपत्रीकरण, नवोदय विद्यालय, महिला समानता, बालिका शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण तथा इनके पाठ्यक्रमों में देश की सांस्कृतिक परंपराओं और मूल्यों की शिक्षा जैसी अच्छी योजनाएं सम्मिलित की गई हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की प्रस्तावना में लिखा है "इतिहास में ऐसे क्षण भी आते हैं जब युगों से चली आई परिपाटी की नई दिशा देनी पड़ती है।" 1986 की शिक्षा-नीति के निर्माताओं ने 1986 में उस क्षण को देखा, क्योंकि अब राष्ट्र के क्षितिज पर 21वीं शताब्दी की चुनौती है।

नई चुनौतियों और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप देश में नई शिक्षा नीति शुरू की गई है।

शिक्षा-नीति में कहा गया है कि प्रत्येक पांच वर्ष में नीति का मूल्यांकन किया जायेगा। अतः 7 मई, 1990 को भारत सरकार ने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर नए सिरे से विचार करने के लिए एक समीक्षा समिति की घोषणा की।

आचार्य राममूर्ति समिति

आचार्य राममूर्ति ने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा कर एक विस्तृत प्रतिवेदन दिया। आचार्य राममूर्ति ने व्यावसायिक शिक्षा और सामान्य शिक्षा को एकीकृत करने, प्रारंभिक बाल्य देखरेख एवं शिक्षा हेतु संविधान के अनुच्छेद 45 में संशोधन, प्राथमिक शिक्षा को एक मूलभूत अधिकार बनाना, विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयीन छात्रों को स्कूली शिक्षा में सुधार से संबंद्ध करना, उच्चतर शिक्षा शुल्कों में वृद्धि, त्रिभाषा फार्मूला शीघ्र क्रियान्वयन आदि दूरगामी महत्व के अनेक सुझाव दिए हैं। इनमें से अधिकांश सुझाव बौद्धिक अधिक और व्यावहारिक कम हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इतने अधिक

स्थिति निर्मित हो चुकी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि केवल ऐसे सुझावों के क्रियान्वयन पर विचार किया जाए, जो व्यावहारिक हों तथा शिक्षा के गुणात्मक विस्तार एवं स्तरोन्नयन को सुरक्षित कर सकें।

संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992—पुनः भारत सरकार ने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का पुनरावलोकन कर 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति संशोधित संस्करण 1992' एवं उसकी संशोधित 'कार्ययोजना 1992 जारी की है। इस प्रकार वर्तमान में यह शिक्षा का नवीनतम नीति निर्देशक दस्तावेज है। आगामी वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन की संभावना है। आज इसे मूल राष्ट्रीय समस्या मानकर हल करने की कोशिश की जा रही है।

सारांश—राष्ट्रीय शिक्षा नीति की व्यवस्थाएं पर्याप्त उपयोगी होने की आशाएं हैं और अंत में आज आवश्यकता है कि हमारी शिक्षा का विकास इस तरह हो कि हम सभी भारतवासी मानव मूल्यों को समझें, उनकी अवहेलना न करें। मानव का मानव से परस्पर सहयोग हो, तथा मानव मानव को घृणा की दृष्टि से न देखें। जो सिद्धांत अति रूढ़िवादी तथा अमानवीय हैं, उनका परित्याग करें। शिक्षा का उद्देश्य हो हम अंधानुकरण न करें, अपितु अपने तर्क, वितर्क द्वारा सत्य व कल्याणकारी बात को ग्रहण करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय शिक्षा के विकास की यात्रा में कई पड़ाव आए हैं। परंतु मंजिल अभी काफी दूर नजर आती है। सार्वजनिक शिक्षा के लक्ष्य से भी अभी हम काफी दूर हैं। अतः राजनैतिक इच्छा शक्ति, शिक्षा के लिए आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता केंद्र स्तर पर बजट का कम से कम 6 प्रतिशत आवंटन, रोजगार–परक शिक्षा का प्रभावी क्रियान्वयन, मानवाधिकारों की शिक्षा, नई चुनौतियों का सामना करने के लिए दूरदृष्टि एवं तदनुसार रणनीति की आवश्यकता है तभी हमारी आगामी पीढ़ी इक्कीसवीं सदी में आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव के साथ प्रवेश कर सकेगी।